1. मेरी भव-बाधा हरो राधा नागरि सोह।

जा तन की झाईं परे, श्यामु हरित-दुति होइ॥

शब्दार्थ

- भव – संसार, जन्म-मरण का चक्र
- बाधा – दुःख, कष्ट, बंधन
- हरो – दूर करो, नष्ट करो
- राधा नागरि – सौंदर्य और माधुर्य की अधिष्ठात्री राधा
- झाईं – छाया, हल्की आभा
- श्याम – श्रीकृष्ण
- हरित-दुति – हरियाली जैसी चमक, तेजस्विता

भावार्थ (विस्तृत व्याख्या)

इस पद में कवि श्रीराधा को संबोधित करते हुए अत्यंत विनयपूर्ण प्रार्थना करता है। कवि कहता है कि यह संसार दुःख, मोह, माया और जन्म-मरण के बंधनों से भरा हुआ है। इन सबको ही भव-बाधा कहा गया है। कवि स्वयं को असहाय मानते हुए राधा से निवेदन करता है कि वे उसकी इन सांसारिक बाधाओं को दूर करें।

राधा को यहाँ केवल एक नायिका के रूप में नहीं, बल्कि भक्ति, करुणा और मोक्ष प्रदान करने वाली शक्ति के रूप में देखा गया है। कवि यह संकेत करता है कि भगवान तक पहुँचने का मार्ग राधा की कृपा से होकर जाता है।

दूसरी पंक्ति में राधा के अलौकिक प्रभाव का अत्यंत सुंदर चित्रण है। कवि कहता है कि राधा इतनी तेजस्वी और दिव्य हैं कि उनके शरीर की छाया मात्र पड़ जाने से ही श्रीकृष्ण के श्यामल (काले) स्वरूप में भी हरित आभा झलकने लगती है। इसका भाव यह है कि राधा का सान्निध्य स्वयं भगवान को भी और अधिक सौंदर्यपूर्ण एवं जीवंत बना देता है।

यहाँ राधा की श्रेष्ठता को अत्यंत सूक्ष्म ढंग से स्थापित किया गया है—वे केवल कृष्ण की प्रिय नहीं हैं, बल्कि उनकी शोभा को बढ़ाने वाली, उनके अस्तित्व को पूर्ण करने वाली शक्ति हैं। राधा के बिना कृष्ण भी अधूरे हैं—यह भक्ति काव्य की मूल धारणा है।

इस प्रकार, कवि यह भाव प्रकट करता है कि यदि राधा की कृपा प्राप्त हो जाए, तो संसार के समस्त दुःख, बंधन और कष्ट स्वतः समाप्त हो जाते हैं और जीव सहज ही ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो जाता है।

काव्यगत विशेषताएँ (संक्षेप में)

- भक्ति रस की प्रधानता
- राधा-कृष्ण भक्ति परंपरा का प्रभाव
- अलौकिक अतिशयोक्ति (छाया से ही कृष्ण की कांति बदल जाना)
- भाषा – सरल ब्रजभाषा, माधुर्यपूर्ण शैली

2 . पंक्तियाँ

“अपने अंग के जानि कै, जीवन-संपत्ति प्रदीन।

तन, मन, नैन, निवेदि को, बड़े हरष हरि कीन॥३॥”

शब्दार्थ

- अपने अंग के जानि कै – अपना ही अंग मानकर
- जीवन-संपत्ति – जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु (अर्थात् स्वयं का अस्तित्व)
- प्रदीन – अर्पित कर दी
- तन – शरीर
- मन – मन, भावनाएँ
- नैन – नेत्र (दृष्टि, अनुभूति)
- निवेदि को – समर्पित करके
- हरष – अत्यधिक प्रसन्नता

- हरि – भगवान (कृष्ण/ईश्वर)
- कीन – किया

भावार्थ (विस्तार से)

इन पंक्तियों में कवि पूर्ण आत्म-समर्पण की भक्ति-भावना को अत्यंत सजीव रूप में व्यक्त करता है। कवि कहता है कि भक्त ने भगवान को अपना से अलग कोई सत्ता नहीं माना, बल्कि अपने ही शरीर का अंग समझकर उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।

यह अर्पण केवल बाहरी वस्तुओं तक सीमित नहीं है। भक्त अपनी जीवन-संपत्ति, अर्थात् अपना पूरा जीवन ही ईश्वर को समर्पित कर देता है। इसके साथ-साथ वह अपना तन (शरीर), मन (विचार और भावनाएँ) तथा नैन (दृष्टि और अनुभूति)—तीनों को ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देता है।

यह समर्पण किसी विवशता या त्याग-भाव से नहीं, बल्कि अत्यंत आनंद और उल्लास के साथ किया गया है। जब भक्त इस प्रकार स्वयं को पूरी तरह ईश्वर को सौंप देता है, तब भगवान भी इस निष्कपट भक्ति से अत्यधिक प्रसन्न होते हैं। यहाँ संकेत है कि ईश्वर को बाहरी आडंबर नहीं, बल्कि पूर्ण समर्पण और सच्ची भक्ति प्रिय है।

इन पंक्तियों के माध्यम से कवि यह सिद्ध करना चाहता है कि भक्ति की सर्वोच्च अवस्था वही है, जहाँ भक्त और भगवान के बीच कोई भेद नहीं रह जाता। भक्त स्वयं को भगवान का अंश मानकर अपना समस्त अस्तित्व उन्हें अर्पित कर देता है।

काव्यगत संकेत

- दास्य और आत्मनिवेदन भक्ति का सुंदर उदाहरण
- तन-मन-धन के स्थान पर तन-मन-नैन का प्रयोग — सूक्ष्म भावनात्मक गहराई
- भक्ति को आनंदमय प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत किया गया है, न कि कष्टसाध्य तप के रूप में